ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि–10 मई 2022
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२३
युगाब्द-५१२३, अंक-१५०, वर्ष-१५
वैशाख विक्रमी २०७९ (मई 2022)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।। –यजुः० ४०। ५।।

व्याख्यान–(तद्=ब्रह्म एजति) वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है। सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा? परन्तु वह सब में पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता। अत एव (तन्नैजजि) यह प्रमाण है। स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है। विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं। (तद् दूरे) अधर्मात्मा अविद्वान् विचारशून्य अजितेन्द्रिय ईश्वरभक्ति-रहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है। अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते। इससे वे तब तक जन्म-मरणादि दुःखसागर में इधर-उधर घूमते फिरते हैं कि जब तक उसको नहीं जानते। (तद्वन्तिके) सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषों के (अन्तिके) अत्यन्त निकट है। [(तद्न्तरस्य ब्राह्मतः)] किंच वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है। सो आत्मा का भी आत्मा है। क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सब में व्याप हो रहा है। उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं ।।

सम्पादकीय

आर्यकरण में बाधाएँ

हम सभी को यह बोध होना ही चाहिए कि आर्यकरण एक पवित्र एवं अति आवश्यक कर्तव्य कर्म है। जैसे कि हम जानते हैं कि मानव रूप में उत्पन्न हुए प्राणि के लिए जितना आवश्यक अन्य प्राणी समुदाय की तरह लालन-पालन, भोजन-छादन है, उतना ही नहीं, अपितु इससे भी कहीं अधिक आवश्यक है- **"शिक्षा का प्रबन्ध।"** और यह तथ्य वर्त्तमान के परिप्रेक्ष्य में इससे स्पष्ट है कि जितना व्यय आज प्रबुद्धवर्ग अन्य व्यवस्थाओं में नहीं करता, उससे कहीं अधिक शिक्षा पर व्यय करता है। **'आर्यकरण'** विशुद्ध रूप में शिक्षा का ही पवित्रकार्य है, जो कि ऋषि परम्परा के अनुकूल नितान्त निःशुल्क रखा गया है, जिससे प्राचीन गुरुकुलीय प्रणाली साक्षात् हो उठती है निःशुल्क रखने से गरीब-अमीर का भेद समाप्त होता है जिससे निर्धनता का कोई बहाना न रहे। अन्य जो भेद समाज को दीमक की तरह खाए जा रहे हैं, आर्यकरण के अभियान के मूल में ऋषि दयानन्द की क्रान्तिदृष्टि के फलस्वरूप वे किंचित् भी दृष्टि पथ पर नहीं आते जैसे- जातिवाद, ऊंच-नीच, छुआ-छूत आदि। इसलिए यह एक पुण्यतम कार्य बनता जा रहा है, बढ़ता जा रहा है।

वर्त्तमान में **'आर्यकरण'** का यह कार्य- 1. हरियाणा 2. उत्तर प्रदेश 3. उत्तराखण्ड 4. दिल्ली 5. राजस्थान 6. मध्य प्रदेश 7. छत्तीसगढ़ 8. गुजरात 9. महाराष्ट्र 10. बिहार 11. झारखण्ड 12. बंगाल तथा विदेश माने जाने वाले अपने सांस्कृतिक राष्ट्र नेपाल तक बढ़ चला है। अतः आर्यकरण में जो भी आचार्य-आचार्या, वैदिक प्रवक्ता, आर्य उपदेशक, प्रचारक, भजनोपदेशक, पदाधिकारी एवं आर्य कार्यकर्त्तागण प्रयत्नशील हैं उन सभी का उत्तरदायित्व पहले से अधिक बढ़ जाता है। कि सर्वप्रथम इस महनीय कार्य की महत्ता को बार-बार विश्लेषित करते हुए अपने-अपने अन्तःकरण में इस प्रकार बैठाएं जिससे कार्यशक्ति एवं कार्यदक्षता दोनों की बढ़ती हो जाए। हम सभी जिस 'आर्य' एवं आर्यावर्त्त के लक्ष्य को हृदय में धारण कर बढ़ रहे हैं, वह लक्ष्य जितना पवित्र और आवश्यक है, उतना ही परिश्रम-पुरुषार्थ अधिक मांगता है जो कि हमें मिलकर करना ही है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से **'आर्य महासंघ'** के तत्त्वावधान में **'राष्ट्रीय आर्य संरक्षिणी सभा'** के पुरुषार्थ से लगभग 200 आर्य समाज गतिशील हो चुके हैं, जो आगामी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तक 500 पूर्ण करने हैं, रूपरेखा तैयार है, साथ ही आर्यगण भी तैयार हैं। जहाँ एक ओर यह सभी शुभ-सकारात्मक समाचार है, वहीं दूसरी ओर बाधाएँ तथा दुष्प्रचारकों की भी न्यूनता नहीं है। शास्त्र में कहा भी गया है–

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... **मुनेरपि वनस्थस्य स्वानिकर्माणि कुर्वतः।**
उत्पद्यन्ते त्रयो धर्मा मित्रौदासीन शत्रवः॥

अर्थात्- वन में निवास करने वाले, मौनवृत्ति का पालन करने वाले, अपने धर्म कार्य में तल्लीन व्यक्ति के प्रति भी तीन प्रकार की वृत्ति वाले प्राणी पाए जाते हैं- कुछ मित्र, कुछ शत्रु तथा कुछ उदासीन। स्वाभाविक है कि जब वन में निवास करने वाले मौनी के साथ ऐसा होता है, तब हम सभी समाज में कार्य करने वाले लोगों के शत्रु होना कोई आश्चर्य नहीं है। कार्य की सफलता के साथ यह शत्रुवर्ग भी बढ़ता ही जाता है। किन्तु सोचनीय विचारणीय वे जन होते हैं जो पहले कार्य करते हैं, पश्चात् किए हुए कार्य को अपनी बुद्धिहीनता से नष्ट करने का कुत्सित प्रयत्न करते हैं। दूसरे क्रम पर ऐसे भी लोग होते हैं, जो कार्य बहुत थोड़ा करते हैं, किन्तु अपने किए गए कार्य का बखान बहुत अधिक करते हैं और जब सर्वथा निष्क्रिय हो जाते हैं, तब उसी समय और उस थोड़े से पुरुषार्थ को ही संगठन का स्वर्णिम युग बताते नहीं थकते हैं। तीसरे क्रम पर ऐसे लोग होते हैं- जो सदाबहार आलोचक होते हैं, वे किसी की आलोचना जन्मगत जाति के आधार पर, किसी की पढ़ाई-योग्यता के आधार पर, किसी की बाल्यकाल की त्रुटियों के आधार पर, किसी की यौवन के आधार पर, किसी की प्रान्तवाद, किसी की क्षेत्रवाद, किसी की निर्धन वाद और किसी की अर्थिक आधार पर करते रहते हैं, वे स्वयं कुछ नहीं करते और करते हुए की सौ-सौ न्यूनताएँ उन्हें चौबीसों घण्टे कण्ठस्थ रहती हैं। चौथे क्रम पर ऐसे धूर्त्त लोग होते हैं- जो सर्वदा और सर्वथा कृतध्न होते हैं, वे मासूम बनकर वाक्पटुता के साथ लोगों से आत्मीय व्यवहार जोड़ते हैं, स्वार्थ अर्थात् धनादि लेना, विद्या लेना, संसाधन लेना, अपने घर के कार्यों में भी सहयोग लेना सिद्ध करते हैं और जब मतलब सिद्ध हो जाए, तब वे किसी भी प्रकार हानि ही करने का प्रयत्न करते रहते हैं, अर्थात् पूर्ण कृतध्नता।

आर्यकरण के पवित्रकार्य में उपरोक्त चार प्रकार के निकटवर्ती निराशावादी लोग सर्वाधिक धातक हैं, यहाँ और भी क्रम-विभाग बनाए जा सकते हैं, जो यथावसर भविष्य में बनाए जाते रहेंगे, किन्तु वर्तमान में जो आर्यगण कार्यक्षेत्र में हैं उन सभी को सम्पूर्ण सावधानी से उपरोक्त से बचने-बचाने की आवश्यकता है। एक भ्रम और कुछ लोगों ने अभी प्रचारित किया हुआ है कि पहले कार्य तीव्रगाति से हो रहा था, बहुत लोग जुड़ रहे थे, आर्यावर्त्त बस बनने ही वाला था कि अब कार्य मन्द हो गया है, सत्र कम लग रहे हैं, लोग शिथिल हो रहे हैं आदि-आदि। ऐसे दुष्प्रचारकों से अपने आर्यगणों को कहना चाहिए कि पहले कार्य मात्र तीन प्रान्तों हरियाणा, उ.प्र. एवं दिल्ली में था, अब बारह प्रान्तों में हो रहा है, सत्रों में सत्रार्थियों का वही औसत तब था, वही औसत आज भी है। हाँ, अवश्य ही पहले सत्र गिने चुने लगते थे, अब अधिक लगते हैं। इसे ऐसे भी व्यक्त कर सकते हैं कि पहले पूरे हरियाणा में एक वर्ष में जितने सत्र लगते थे, उतने तो अब एक जिले में एक वर्ष हो जाते हैं। अतः किसी भी प्रकार की शिथिलता के बिना 'आर्यकरण' का यह ऐतिहासिक पुण्यकार्य निरन्तर-निर्बाध बढ़ता जा रहा है और बढ़ता जाना चाहिए। यह एक दिन, एक मास, एक वर्ष का कार्य नहीं है, यह तो पीढ़ी दर पीढ़ी करते रहना पड़ेगा। जैसे विद्यालयों, महाविद्यालयों, गुरुकुलों आदि में शिक्षा पहले भी दी जाती थी, आज भी दी जा रही है और आगे भी दी जाती रहेगी। आर्यकरण पहले भी आवश्यक था, आज भी है और भविष्य में भी **'आर्यकरण'** अति आवश्यक रहेगा।

-आचार्य हनुमत् प्रसाद, अध्यक्ष, आर्य महासंघ

प्रथम गुरुकुल सत्र या सत्यार्थप्रकाश ?

- आचार्य अशोकपाल

नमस्ते जी!

सत्यार्थ प्रकाश एक क्रमशः पढ़ने, समझने एवं आचरण में लाया जाने वाला पुस्तक है। कई बार देखने में आता है कि कुछ भावुक आर्यगण विभिन्न अवसरों पर अपने जानकारों को यूं ही सत्यार्थ प्रकाश आवंटित करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे में हमें परिचर्चा की आवश्यकता है कि अपने जानकारों को प्रथम गुरुकुल सत्र करवाया जाए तत्पश्चात सत्यार्थ प्रकाश दी जाए अथवा बिना गुरुकुल सत्र करवाए ही सत्यार्थ प्रकाश आवंटित की जाए। लाभकारी प्रकल्प कौन सा है?

सामान्यतः देखने में आता है कि बिना गुरुकुल सत्र किये ही सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने वाले लोग अपनी साम्प्रदायिक मानसिक स्थिति के कारण रामपाल दास की भांति मध्य मध्य से ही पढ़ पाते हैं और आर्य बनने की अपेक्षा समझ न आने वाले गूढ़ सैद्धांतिक विषयों का विरोध प्रारम्भ कर देते हैं। साथ साथ यह भी कहते हैं कि समझ नहीं आ रहा है। ऐसे में आवश्यक है की प्रथम आर्ष विद्या द्वार में प्रवेश से पूर्व गुरुकुल सत्र करवाया जाए, फिर सत्यार्थ प्रकाश बांटी जाए, जिससे व्यक्ति की सांप्रदायिकता का समूल नाश गुरुकुल सत्र के माध्यम से किया जा सके और विधिपूर्वक सत्यार्थप्रकाश पठन-पाठन हो सके। लघु गुरुकुल का पाठ्यक्रम व्यक्ति को और अधिक आर्ष विद्या प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। सत्यार्थप्रकाश तो आर्ष विद्या का प्रवेश द्वार है ही, जो जन सत्यार्थप्रकाश वितरण करना चाहें, राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित गुरुकुल सत्र परंपरा के माध्यम से ही करवायें।

'संशय निवारण ९५४१३०५१३८ पर करें।'
'प्रथम गुरुकुल सत्र, फिर आर्ष विद्या प्रवेश।'
'आर्ष विद्या प्रवेश द्वार - सत्यार्थप्रकाश।'

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	01 अप्रैल	दिन-शुक्रवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-उत्तराभाद्रपदा
पूर्णिमा	16 अप्रैल	दिन-शनिवार	मास-चैत्र	ऋतु-वसन्त	नक्षत्र-हस्त
अमावस्या	30 अप्रैल	दिन-शनिवार	मास-वैशाख	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-अश्विनी
पूर्णिमा	16 मई	दिन-सोमवार	मास-वैशाख	ऋतु-ग्रीष्म	नक्षत्र-विशाखा

सहज सरल सांख्य-२२

- आचार्य सतीश, दिल्ली

किसी वस्तु का होना न होना उसके प्रमाणों (साधनों) पर निर्भर करता है साधक प्रमाण होने पर वस्तु का अस्तित्व सिद्ध होता और बाधक प्रमाण होने पर वस्तु का अभाव सिद्ध होता है। कोई भी बाधके प्रमाण न होने से आत्मा का अभाव नहीं अस्तित्व सिद्ध होता है।

ठीक है आत्मा के होने में कोई विवाद नहीं, पर वह आत्मा देहादि से अतिरिक्त है, यह कैसे निश्चित हो?

देह जड़ तथा परिणामी है, आत्मा चेतन व अपरिणामी है। अत: आत्मा देह, इन्द्रिय, अन्त:करण आदि से विलक्षण होने के कारण भिन्न है। कहते भी हैं- यह मेरा शरीर है। मैं शरीर हूँ ऐसा कोई नहीं कह पाता। अर्थात् मैं अलग हूँ मेरा शरीर अलग है।

देहादि से अतिरिक्त चेतन आत्मा की मुक्ति की अवधारणा क्या है?

त्रिविध दुखों की अत्यन्त निवृत्ति से आत्मा की मुक्ति हो जाती है। अनेक प्रकार के दुखों की निवृत्ति तो भोगकाल में भी होती रहती है पर दूसरे दुख फिर सामने आ जाते हैं, आत्मासाक्षात्कार होने पर प्रकृति के साथ आत्मा का सम्पर्क नहीं रहता, तब यही मुक्ति की अवस्था है।

दुख निवृत्ति के साथ सुख भी चला जाता है तो फिर यह मुक्ति कैसी?

जिस प्रकार पुरुष को दु:ख विषयक प्रबल द्वेष होता है, वैसा सुख विषयक अभिलाष नहीं होता। संसार में भी देखा जाता है कि जैसी प्रतिकूल भावना दुख के प्रति होती है वैसी अनुकूलता सुख के प्रति नहीं होती अत: मोक्षरूप परमपुरुषार्थ दुखों की अत्यन्त निवृत्ति में ही है।

वैसे भी सुख भोग से प्राप्त होता है। वह भी अल्प ही है। लेकिन जितने भी भोग हैं वे सुख साथ दुख भी लाते हैं अर्थात् यह सुख भी दुख मिश्रित है। इसलिए विवेकी पुरुष इस सुख को भी दुख की श्रेणी में डाल देते हैं।

फिर भी प्रत्येक व्यक्ति में 'मैं दुखी न होऊँ' इस भावना के साथ ''मैं सुखी होऊँ' यह भावना भी रहती है। अत: केवल दुख: निवृत्ति को ही पुरुषार्थ कैसे माना जाए?

वस्तुत: सुख पद विषयों से प्राप्त होने वाली अनुकूलताओं का बोध कराता है। यदि मोक्ष में भी वैषयिक अनुकूलताओं की प्राप्ति मानी जाए तो वह मोक्ष न रहकर भोग की अवस्था होगी। अत: दुखों की निवृति होने पर ही वह परम पुरुषार्थ है। वैषयिक सुखों की प्राप्ति पुरुषार्थ तो है लेकिन परम पुरुषार्थ नहीं है। परमपुरुषार्थ तो केवल त्रिविध दुखों की निवृति ही है। वैसे भी मोक्ष में दुखों की अत्यन्त निवृति के साथ-साथ जीवात्माओं को परब्रह्म परमात्मा के आनन्दरूप का साक्षात् अनुभव होता है। कोटि-कोटि वैषयिक सुख भी उस आनन्दानुभव की समता नहीं कर सकते। मोक्षरूप पुरुषार्थ में उसका नाम लेकर गणना करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि दुख की अत्यन्तनिवृत्ति होने पर उसकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

सुख-दुख-मोह, रूप, सत्व, रजस्, तमस्, सांख्य में गुण हैं। आत्मा इनसे भिन्न स्वभावत सुख-दुख से रहित है। फिर उसके लिए दु:ख की निवृति का तात्प्रर्य क्या?

सुख-दुख आदि विकार अन्य का धर्म हैं अर्थात् सत्व, रजस् का विकार होने पर भी उनकी अनुभूति आत्मा को होती है। इसका कारण है कि आत्मा को जब तक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता, वह प्रकृति के संसर्ग में अविवेक के कारण बना रहता है। इसमें सब प्रकार के सुख-दुख की अनुभूति आत्मा को होती रहती है।

आत्मा के साथ गुणों का सम्बन्ध अविवेक के कारण है तो फिर आत्मा को अविवेक होने का कारण क्या है?

अविवेक अनादि है क्योंकि यदि इसे बिना कारण कहीं से प्रारम्भ माना जाए तो मुक्त अवस्था में रहते हुए अविवेक होना सम्भव व प्रामाणिक नहीं है। दूसरा यदि इस अविवेक का कारण कर्म माना जाता है तो उस कर्म का कोई कारण बताना होगा और वह अविवेक रूप होगा, फिर उसके भी किसी कारण की खोज करनी होगी, इस प्रकार अनवस्था दोष आ जाएगा, अत: अविवेक को अनादि मानना युक्तियुक्त है।

लेकिन अविवेक कोई एक व्यक्तिरूप अनादितत्व नहीं है। वस्तुत: जड़ और चेतन के भेद का साक्षात्कार न होना ही अविवेक है। यह ज्ञान का अभाव नहीं अपितु जड़-चेतन को वास्तविक अंससर्ग को न जानना है। यह प्रवाह से अनादि है, जब तक आत्मज्ञान न हो जाए इसकी स्थिति बराबर बनी रहती है।

आत्मा के समान अविवेक अनादि अनन्त एक रूप रहता हुआ नित्य नहीं है। जैसा आत्मा अनादि अनन्त एक व्यक्ति रूप नित्य है वैसा अविवेक नहीं है। यदि वैसा हो तो फिर उसका उच्छेद ही न हो, फिर तो आत्मा का मोक्ष होना सम्भव नहीं। उसका प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है जब तक आत्मज्ञान न होगा,

इस बन्ध कारण विवेक का नाश कैसे होता है?

जैसे अन्धकार का नाश अपने विरोधी नियत कारण प्रकाश से होता है, इसी प्रकार अविवेक का नाश अपने विरोधी नियत कारण प्रकाश से होता है। इसी प्रकार अविवेक का नाश अपने विरोधी विवेक के द्वारा होता है। प्रकृति-पुरुष अथवा जड़-चेतन के भेद का साक्षात्कार ज्ञान हो जाना विवेक है, उसके होने पर अविवेक निवृत हो जाता है। जैसे अविवेक नाश का कारण विवेक है और विवेक का निश्चित कारण आत्म विषय ज्ञान है जो श्रवण, मनन, निदिध्यासन यम नियमादि के पालन द्वारा समाधि लाभ होने पर होता है।

क्रमश ....

संध्या काल

वैशाख-मास, ग्रीष्म-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(17 अप्रैल 2022 से 16 मई 2022)
प्रात: काल: 5 बजकर 30 मिनट से (5.30 A.M.)
सांय काल: 7 बजकर 00 मिनट से (7.00 P.M.)

ज्येष्ठ-मास, ग्रीष्म-ऋतु, कलि-5122, वि. 2078
(17 मई 2022 से 14 जून 2022)
प्रात: काल: 5 बजकर 15 मिनट से (5.15 A.M.)
सांय काल: 7 बजकर 15 मिनट से (7.15 P.M.)

स्वाभिमान

-आर्य आनन्द स्वरूप, मुजफ्फरनगर

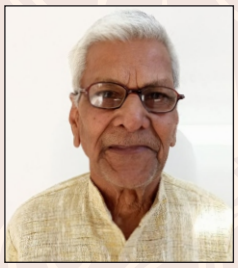

एक होता है अभिमान जो मनुष्य का शत्रु है। अभिमान के कारण अनेकों घर-परिवार, राष्ट्र तक नष्ट हो गये। मनुष्य के 5 भयंकर शत्रुओं में अभिमान जिसका दूसरा नाम अहंकार है, भी आता है। पांच शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। शत्रु से सदा बचना ही अच्छा होता है। शत्रु से दूरी ही ठीक है, नहीं तो अवसर पाते ही शत्रु वार कर देता है। यह शेर जैसे हिंसक पशुओं की तरह ही अवसर की खोज में रहता है। इसे मारना भी तो आसान नहीं, फिर भी प्रयत्नशील तो रहना ही चाहिये।

अभिमान से मिलता हुआ ही है स्वाभिमान। दोनों सगे भाई से लगते हैं परन्तु अन्तर तो जमीन आसमान का है। **'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं नर पशु निरा और मृतक समान है'** कवि कथन है। इस कथन में पशु का तिरस्कार है। क्यों क्या पशु में स्वाभिमान नहीं होता। कुत्तों को डंडा दिखाइये, मारिये तो भौं-भौं कर स्वाभिमान दिखाते हैं। बैल भी अपने सींग हिलाकर प्रतिवाद करता है। हिसंक पशु तो गोली के सामने भी आक्रामक रहते हैं भले ही गोली खा बैठें। हाँ गधे की मिसाल आप देगें तो अगल ही बात है, यद्यपि डंडा लगाने पर कभी कभी वह भी होचूं-होचूं कर देता है। वैसे गधे का उदाहरण आप मनुष्यों पर न लगायें तो अच्छा ही है क्योंकि हम में कुछ उसके भाई भी होते हैं। रिश्ते में नहीं अपितु स्वभाव में। स्वाभिमान के कारण ही देश के अनेकों शहीदों ने बलिदान दिये हैं क्योंकि उन्हें पराधीनता रूपी गधा स्वभाव नहीं भाता था। वे तो शेर की भाँति गोली के सामने कूदकर आते थे। हालाकि उस समय भी गधों के स्वभाव वाले ही अधिक थे, वैसे आज भी कम नहीं हैं। **को नृप होइ हमें का हानि,** को मानते हुए उन्हें तो निज सुख-दुख की चिंता रहती है। जाति-धर्म-राष्ट्र का तो पता ही नहीं किन चिड़ियों के नाम हैं। हमारी जाति पर, हमारे धर्म पर, हमारे राष्ट्र पर कोई वार करे और हमारे सिर में जूँ भी न चले। हमारी बहू बेटियों पर कोई हाथ डाले और हम चूँ न करें। समझिये ये ही स्वाभिमान का उल्टा है। और इसका सीधा स्वाभिमान। एक कहानी है, कहानी तो कहानी होती है केवल सीख के लिये, एक सर्प को किसी सन्त न उपदेश दिया कि किसी को काटना बुरा है, मत काटा कर। सांप सीख पर चल पड़ा। अब लोग आते-जाते उसे छेड़ते, ढेले आदि से मारते, बुरा हाल हो गया। एक दिन जब सन्त उधर से पुन निकले तो सांप की दशा देखी सांप रोने लगा, आप के उपदेश ने मेरा यह हाल कर दिया। अरे भाई मैंने काटने को ही तो मना किया था। फुँफकारने को तो नहीं। यह फुँफकार ही स्वाभिमान है। हम किसी का अहित न करें परन्तु हमारे साथ भी तो वैसा ही व्यवहार होना चाहिये।

पराधीनता के लम्बे समय में वे सभी बातें हमने झेली जो एक पराधीन-गुलाम को झेलनी होती हैं। न बहु-बेटियाँ सुरक्षित न धर्म-जाति, राष्ट्र तो था ही पराधीन-गुलाम और राष्ट्र के साथ-साथ हम राष्ट्र वाले भी। साहित्य जला दिया गया, भाषा निर्वासित कर दी गई, यद्यपि राष्ट्र स्वाधीन हुआ परन्तु वह हजार वर्षो के गुलामी की लकीरें, अभी तक नहीं मिटी। आज भी बहु-बेटियाँ सुरक्षित नहीं हैं। प्रत्येक दिन समाचार पत्रों में समाचार भरे रहते हैं। साहित्य जो अपभ्रंश किया गया था अभी तक शुद्ध करने का साहस नहीं हो पा रहा है। और भाषा, भाषा के तो कहने ही क्या। कहते हैं राष्ट्रवादी सरकार है परन्तु शासन की ओर से ही राष्ट्रीय भाषाओं की दुर्गति हो रही है। अपने छोटे-छोटे शब्दों के लिए भी अंग्रेजी के बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग हो रहा है भले ही अधिकांश अग्रेंजी जानने वाले समझें न समझें। बहुत से शब्दों को शब्द कोष में ढूढ़ना पड़ता है। डिस्टेन्सिंग में साढ़े पाँच शब्द है औ इसके हिन्दी शब्द दूरी में केवल दो शब्द, परन्तु प्रयोग-प्रचार तो डिस्टेन्सिंग का ही होना है चाहें, समाचार पत्र हो या दूरदर्शन कार्यक्रम। यह तो एक उदाहरण है, ऐसे अनेकों दूसरी भाषाओं के शब्दों को राष्ट्रीय भाषाओं के सिर पर पटका जा रहा है। कोई दूसरे मतों से सम्बन्धित कार्यक्रम अथवा समाचार पत्र हो तो उन मतों से सम्बन्धित भाषाओं के ठेठ शब्दों के बीच में राष्ट्रीय भाषाओं के शब्दों का साहस नहीं है पधारने का। स्वाभिमान बहुत दूर है।

देवी-देवताओं, मूर्तियों की दुर्गति के समाचार भी आते ही रहते हैं। और इन सभी अपमानों में अपनो का हाथ ही अधिक रहता है। साहस है किसी अन्य मत-सम्प्रदाय के विषय में एक शब्द भी निकल जाये। माना कि किसी अन्य मत-सम्प्रदाय पर आक्षेप करना हमारी सभ्यता के विरुद्ध है परन्तु अपना अपमान रहना भी तो हमारी सभ्यता में नहीं है।

वेशभूषा भी अन्य की तरह नष्ट हुई है। हमारी अपनी न कोई भाषा है, न कोई वेशभूषा है। धन्य हैं वे जातियाँ जिन्होंने अपनी संस्कृति को दृढ़ता के साथ थामे में रखा है। वें अपने देश में रहें या विदेश में अपनी वेशभूषा और भाषा को व्यवहार में रखते हैं। हमारे राजनेताओं को स्वाभिमान का तो पता ही नहीं, ऐसे राजनेता हमारे पतन का कारण है।

कुर्सी के लिए इन राजनीति वालों से कुछ भी करा लो। अपनों को गाली दूसरों की बढ़ाई, अपनों की काट गैरों का साथ, क्या नहीं होता इस राजनीति में। यहाँ स्वाभिमान नहीं है।

दूरदर्शन के कार्यक्रमों में समाचार वाचकों को भयंकर गर्मी में भी कोट-सूट-टाई में देख कर लगता है कि एक और गरीब देशवासी जाड़ों में भी गर्म कपड़ों से तरसते रहते हैं और दूसरी ओर भयंकर गर्मी में भी गर्म कोट-सूट-टाई। कोट-सूट पहनने पर ए.सी. भी अधिक तेज चलाना होता होगा। अभी भी राष्ट्र में विद्युत उत्पादन इतना अधिक नहीं कि इन कोट-सूट-टाई वालों को अतिरिक्त व्यय के साथ विद्युत उपलब्ध हो, परन्तु हो रही है। किसी का इस ओर ध्यान ही नहीं जाता। यह स्वाभिमान नहीं है।

संसार में सभी कुछ परिवर्तनशील है। यदि मनुष्य परिवर्तन के साथ नहीं चलता तो धोखा खाता है। प्रधान-मंत्री बनने के बाद भी माननीय नरेन्द्र मोदी, सूट का प्रयोग भी करते थे और उस पर लोगों को, लोगों को क्या राजनीति वालों को, आक्षेप करने के अवसर मिले। परन्तु धन्य हैं मोदी जी समय के साथ बदले। अपनी संस्कृति के अनुसार, राष्ट्रीय वेशभूषा को अपना लिया। पहले से अधिक प्रभावशाली और अपने लगते हैं।

जिस जाति, राष्ट्र ने अपना स्वाभिमान, संस्कृति खोई वह नष्ट ही हो गया। संस्कृति ही स्वाभिमान है।

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-३२

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

व्यवहार व पवित्रता की बात ऋषिगण हमें सिखाना चाहते हैं क्योंकि ये दोनों अर्थात् शुद्धता और बाहर-भीतर का व्यवहार, सम्बन्धों की दिशा-दशा को निश्चित करने वाले अवयव हैं। पहले भी हम स्पष्ट कर चुके हैं कि पवित्रता सम्बन्धों का सीमेंट है। पवित्रता और व्यवहार दोनों अर्थ के चारों ओर घूमते हैं। इसलिए अर्थ की पवित्रता को ही सबसे अधिक आवश्यक माना गया है। ऋषियों ने यहाँ तक कहा है कि मिट्टी और जल से की गई शुद्धि अर्थ की शुद्धि के सामने कोई महत्ता नहीं रखती है।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥

अर्थ- जो धर्म ही से पदार्थों का सञ्चय करना है, वही सब पवित्रताओं में उत्तम पवित्रता, अर्थात् जो अन्याय से किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करता, वही पवित्र है। किन्तु जल-मृत्तिकादि से जो पवित्रता होती है, वह धर्म के सदृश उत्तम नहीं है।

उपरोक्त विचार के उपरान्त इस शुचिता को जीवन में कैसे धारण करें और किससे क्या शुद्ध होता है इस पर ऋषि निर्देश देखते हैं।

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः॥
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

अर्थ- विद्वान् लोग क्षमा से, दुष्ट कर्मकारी सत्सङ्ग और विद्यादि शुभ गुणों के दान से, गुप्त पाप करनेहारे विचार से त्याग कर और ब्रह्मचर्य तथा सत्यभाषणादि से वेदवित् उत्तम विद्वान् शुद्ध होते हैं।।

किन्तु जल से ऊपर के अंग पवित्र होते हैं, आत्मा और मन नहीं।

मन तो सत्य मानने, सत्य बोलने और सत्य करने से शुद्ध और जीवात्मा विद्या योगाभ्यास और धर्माचरण ही से पवित्र तथा बुद्धि ज्ञान से ही शुद्ध होती है, जल मृत्तिकादि से नहीं।

विद्वान लोग क्षमा से शुद्ध होते हैं। क्षमा का अर्थ है निन्दा, स्तुति, मानापमान का सहन करके धर्म ही करना। इसे दूसरी तरह से समझने का प्रयास करते हैं, विद्वान यदि किसी के द्वारा की जा रही निन्दा से प्रभावित होकर सत्यासत्य को उसके यथार्त रूप में नहीं बताएगा बल्कि स्तुति से प्रभावित होकर असत्य के पक्ष में खडा हो जाएगा और उससे भी आगे बढते हुए यदि वह मान से वा अपमान से प्रभावित होकर वह अपनी विद्या का दुरुपयोग करेगा। तब ऐसे विद्वान को क्या कह सकते हैं? निश्चित ही उसे अपवित्र कहना उचित होगा। ऐसा अपवित्र विद्वान संसार के लिए विष कुम्भ की भाँति ही है। इसलिए विद्वानों को चाहिए कि क्षमा अर्थात निन्दा, स्तुति और मानापमान को सहन करते हुए बस सत्य ज्ञान, सत्योपदेश, सत्य रक्षण और सर्वप्रकारेण सत्य की स्थापना में ही स्वयं को समर्पित करना चाहिए।

जो दुष्टकर्म अर्थात अकर्म करने वाले लोग हैं उनकी शुद्धि के लिए उन्हें सत्संग और विद्यादि शुभगुणों के दान की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो उनका पवित्र होना इस पर निर्भर करता है कि उन्हें सत्संग मिले और सच्चे लोग उन पर कृपा करके उन्हें विद्या आदि शुभ गुणों से युक्त कर दें। दुष्ट या अकर्म से तात्पर्य उन सभी कर्मों से है जो करने के योग्य नहीं, जिन्हें करना नहीं चाहिए और जिन कामों को करना नहीं चाहिए वही तो अधर्म हैं। जैसे उदाहरण के लिए मान लीजिए कोई व्यक्ति शराब पीता है और मांसाहार भी करता है, अब यह अधर्म तो है ही। ऐसी आदतों मे पडा हुआ व्यक्ति यदि सत्संग को प्राप्त हो जाए (ईश्वर, वेद व धर्मात्मा विद्वान आदि के संग को सत्संग कहते हैं।) अर्थात ईश्वर की उपासना करे वेद का अध्ययन श्रद्धा पूर्वक करे और धर्मात्मा विद्वानों के साथ रहकर उनका अनुसरण करने लगे तो उसका झूठ या अधार्मिक व्यवहार छूटकर सदकर्म का अभ्यास होते देर नहीं लगती। इस प्रकार का संग मिलना सौभाग्य की बात है। उपरोक्त तीनों में से ही यदि किसी को एक भी साधन मिले तो अकर्म छुडाने में समर्थ है और यदि तीनों ही मिल जावें तो क्या कहने।

गुप्त पाप करने वाले जो लोग हैं या जो साजिसें करते हैं वस्तुतः जिनको धूर्त कहते हैं इनकी शुद्धि कोई दूसरा व्यक्ति चाहकर भी नहीं कर सकता। इसके लिए तो ईश्वर की विशेष अनुकम्पा की ही आवश्यकता होती है। आर्यगण इस पाप से बचने के लिए प्रतिदिन के यज्ञ में प्रार्थना करते हैं **'युयोध्यस्मत्जुहुराणमेनः'** हे ईश्वर! हमसे कुटिलता युक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए। जब तक यह स्वयं अपने कुटिल पापयुक्त विचार का स्वतः परित्याग नहीं करेगा तब तक वह शुद्ध नहीं हो सकता। यह बहुत ही कठिन कार्य है क्योंकि ऐसा व्यक्ति वस्तुतः कुटिलता को अपना स्वभाव बना चुका होता है और विद्वानों ने कहा है स्वभावो दुरतिक्रम। अतः कुटिलता को छोडने के लिए मनुष्य को घनघोर परिश्रम अवश्य करना चाहिए। क्योंकि जहाँ अकर्म का कर्त्ता सज्जनों की दया का पात्र है वहीं कुटिल तो लाइलाज है सम्भवतः इसी कारण से कुटिलों से दूर रहने को सभी कहते हैं। यहाँ यह बात गृहस्थों को जान लेनी चाहिए कि धूर्त को सुधारने की तुलना मे उससे दूरी बनाए रखना ही अधिक उचित है।

वेदवित् विद्वानों की शुद्धि के लिए पुनः ब्रह्मचर्य और सत्यभाषणदि तप को साधन कहा है। यह बहुत ही आवश्यक बात है कि विद्वान को तपस्वी होना ही चाहिए इस पर बहुत सी चर्चा सम्भव है किन्तु एक छोटे से उदाहरण से इसे समझ सकते हैं। किसी वाहन के चालक को एकाग्र होना चाहिए मार्ग के आकर्षण में वह उलझ नहीं सकता, प्रभावित नहीं हो सकता, आकर्षण से प्रभावित होकर वह मार्ग नहीं बदल सकता। यदि वह प्रभावित हुआ तो उसके भरोसे रहनेवाले सभी लोग अपने गन्तव्य अपने लक्ष्य से भटक जायेंगे। विद्वान भी समाज का पथ प्रदर्शक अथवा चालक ही है। इसी लिये उसे क्षमाशीलता ही शुद्ध अर्थात् समाज राष्ट्र और स्वयं की उन्नति के लिये उपयोगी बनाये रख सकती शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... है।

बाह्य शरीर तो जल आदि से पवित्र हो जाता है किन्तु जिन मन बुद्धि और जीवात्मा को शुद्ध करने की आवश्यकता सर्वाधिक है वे इतनी सरलता से शुद्ध नहीं होते हैं। मन की शुद्धता निर्भर करती है सत्य के व्यवहार उसके अभ्यास पर, प्रथम तो सत्य को जानने की प्रवृत्ति बनाना। जबकि मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, इसके बाद भी बाह्य विषयों का आकर्षण, आलस्य प्रमाद आदि के कारण सत्य को जानने के अपने स्वभाव को भी दबा देता है। यह प्रवृत्ति बनाने की अवश्यकता सर्वप्रथम है। पुनः उस सत्य को जानकर बोलना यह अभ्यास और कला भी है। सत्य बोलना भी है परन्तु अनावश्यक नहीं बोलना है, जो परस्पर विवाद को बढा दे ऐसा सत्य बोला जाए या न बोला जाए यह पर्याप्त विवाद का विषय रहा है और है भी। इसी प्रकार के और भी विषय हैं। इन दोनों से महत्वपूर्ण है सत्य करना। यह तो कई बार बडा दुःखदाई और मृत्यु तक का कारण भी बन जाता है। फिर भी इन तीनों के बिना मन की शुद्धता संभव नहीं है। विद्या योगाभ्यास और तप से जीवात्मा पवित्र होता है। जीवात्मा की पवित्रता अपवित्रता को समझने के लिए भी विचार की आवश्यकता है। क्या जीवात्मा अपवित्र हो सकता है? अथवा उसकी अपवित्रता से क्या तात्पर्य है?

आर्योद्देश्यरत्नमाला

प्रणेता - ऋषि दयानन्द
व्याख्याता - आचार्य परमदेव मीमांसक

९६. पुराण-जो प्राचीन ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि-मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा, नाराशंसी कहते हैं।

व्याख्या-जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं।

(सत्यार्थप्रकाश स्वम० प्रकाश)

ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, साम ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण को ही पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं। वेद का सर्वप्रथम व्याख्यान आचार्य ब्रह्मा ने किया, तदनन्तर इन व्याख्यानों का संकलन और नवीन प्रवचन अन्य ऋषियों एवं मुनियों ने करके ब्राह्मणादि ग्रन्थ बनाये। ये ब्राह्मण ग्रन्थ परतः प्रमाण वाले हैं, इनका प्रमाण वेद के अधीन है, यदि सुदीर्घ काल में आलस्य और अविद्या आदि के कारण इसमें वेद विरुद्ध वचन हो तो वह-वह अंश अप्रामाणिक एवं त्याज्य होगा ।

९७. **उपवेद**-जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्र विद्या-राजधर्म, जो गान्धर्ववेद गानशास्त्र और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र है; इन चारों को **'उपवेद'** कहते हैं।

व्याख्या-चारों वेदों के एक-एक उपवेद हैं, ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है जिसमें चिकित्सा सम्बन्धी विवेचन है। इसमें वर्तमान में निघण्टु, चरक और सुश्रुत ग्रन्थ मुख्य हैं। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है, इसमें युद्ध के उपकरणों के निर्माण एवं प्रयोग आदि का विवेचन तथा राजधर्म है; इसमें युद्ध निर्माण सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ लुप्तप्राय हैं, संकीर्ण विवेचन ही यत्र तत्र रामायण, महाभारत, यन्त्रसर्वस्व, समरांगण सूत्रधार, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है। राजधर्म सम्बन्धी विस्तृत विवेचन मनुस्मृति, महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में है। सामवेद का उपवेद गन्धर्ववेद है, जिस में गान विद्या है। अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद है, इस को शिल्प शास्त्र भी कहते हैं। जिसमें विमान, तार एवम् अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों का वर्णन है; इसके ग्रन्थ भी अनुपलब्ध हैं, यत्र-तत्र पूर्वोक्त यन्त्रसर्वस्वादि ग्रन्थों में ही वर्णन मिलता है। इन्हीं उपवेदों में से विद्याएँ निकाल-निकाल कर प्रायोगिक रूप में वर्णित की गयी थीं, जिनसे भारत लक्षाब्दियों तक शिष्ट, समृद्ध और महान् पराक्रमशाली बना रहा।।

९८. वेदांग-जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आर्ष सनातन शास्त्र हैं, इनको **'वेदांग'** कहते हैं।

व्याख्या-वेदों के अर्थ को जानने एवं लौकिक व्यवहारों के निष्पादन हेतु इन ग्रन्थों में शिक्षा -पाणिनि मुनि कृत; कल्प-श्रौत, गृह्य, शुल्ब और धर्मसूत्र, इन में वेदों के अनुसार पृथक्-पृथक् श्रौतसूत्रादि भी हैं, जैसे-आश्वलायन श्रौतसूत्र (ऋग्वेद), कात्यायन श्रौतसूत्र (यजुर्वेद) आदि; व्याकरण-पाणिनिमुनि कृत अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादिपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन एवं पतञ्जलि मुनिकृत महाभाष्य; निरुक्त-यास्कमुनिकृत; छन्द-पिङ्गलाचार्यकृत; ज्योतिष-सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थ **वेदांग** कहलाते हैं।

९९. उपांग-जो ऋषि-मुनिकृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं, इनको **'उपांग'** कहते हैं।

व्याख्या-ऋषियों-मुनियों ने ब्राह्मणादि ग्रन्थों में आये हुए व्यवहारिक और आध्यात्मिक ग्रन्थियों (समझने में कठिन स्थलों, प्रसंगों, सिद्धान्तों, शब्दों आदि के रूप में) को सुलझाने हेतु, यथार्थ निर्णय के लिए, वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा उनके प्रायोगिक रूप जिस से वे प्रत्यक्ष हो सकें, इन मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ग्रन्थों की रचना की, इन्हें **उपांग** कहते हैं। सम्पूर्ण विश्व भर में यह अपार बहुमूल्य सम्पत्ति अन्यत्र कहीं नहीं है, इस ज्ञान का सहस्रांश भी अन्य मतावलम्बियों के पास नहीं है, यह महान् मानवीय मूल्यों, सत्य की अवधारणाओं, अतीन्द्रिय को भी प्रत्यक्ष कराने वाले सिद्धान्तों तथा उपायों से परिपूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यजनक ग्रन्थ रत्न हैं। यह ऋषियों के द्वारा प्रदान की गयी हम मनुष्यों के लिये अत्यन्त बहुमूल्य परिसम्पत्ति है, हम आर्यजन एवं विद्वान् लोग इन ग्रन्थों का पठन-पाठन, सिद्धान्तों का जीवन में धारण, प्रचार-प्रसार, यथार्थ अर्थ एवं शब्दों की सुरक्षा करके ही सुख और आनन्द की प्राप्ति कर-करा ऋषि ऋण से मुक्त हो सकते हैं।

१००. नमस्ते-मैं तुम्हारा मान्य करता हूँ।।

व्याख्या-हम मुनष्यों के लिये परस्पर अभिवादन **'नमस्ते'** है, वेद में उपलब्ध 'नमस्ते' के अर्थ और प्रसंगों के अनुसार यह अनुकरण है। हमारे आर्ष ग्रन्थों एवम् आर्य परम्पराओं में अभिवादन की प्रणाली यही है।।

इति आर्योद्देश्यरत्नमाला समाप्ता।।

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

इस दो दिवस सत्र के अन्तर्गत मुझे अपने महान पूर्वजों व उनकी क्षमता, योग्यताओं के बारे में जानकारी प्राप्त हुई कि किस तरह हमारे इस देश को व हमारे पूर्वजों के साथ छल-कपट व उनके द्वारा किए गए गलत व्यवहारों जैसे मद्यपान, जुआ या अंधविश्वासों में फंसकर इस देश के टुकडे-टुकडे हुए और आज भी इन्हीं व अन्य दुर्व्यवहारों के कारण यह सभी हो रहा है।

परन्तु अब इस सत्र के माध्यम से यह ज्ञान हुआ है कि हम पूर्व में क्या थे और हमारी क्या योग्यता थी और अब उसी को दोबारा याद करके इस देश को उपरोक्त व्याभिचारों से बचाकर एक सूत्र में पिरोना होगा और यह कार्य एक आर्य बनकर सभी को आर्य बनाने का प्रयत्न करना होगा तभी यह देश बच सकेगा और हम।

मैं आर्यों के सिद्धान्तों का पालन करुंगा और अन्यों को भी आर्य बनाने और बनने में सहयोग करुंगा।

नाम : हेमन्त कुमार, आयु : ४५ वर्ष, योग्यता : एम.ए. बी.एड, कार्य : अध्यापक, पता : पुन्हाना, मेवात, हरियाणा।

मैंने इस सत्र में ईश्वर, धर्म आदि के बारे में जाना है। मैं इस सत्र से सहमत हूँ। इसमें मैंने जो हमारे देश में कमियाँ हैं, उनके बारे में जाना और यह भी जाना कि उन कमियों को कैसे दूर किया जाए। मैंने इसमें अपने राष्ट्र के बारे में जाना। मैंने इसमें ईश्वर की उपासना करना और वेदों की आज्ञाओं पर चलना सीखा। मैंने इसमें वेदों की आज्ञाएं जानी और अपने आप और दूसरे लोगों को आर्य बनाने के बारे में भी जाना। आर्य बनकर ही हम अपने राष्ट्र और राष्ट्र के लोगों की रक्षा कर सकते हैं।

मैं आर्य सभा का प्रचार करना चाहता हूँ। मैं आर्य सभा का प्रचार मोबाइल द्वारा, लोगों के द्वारा आदि करुंगा और लोगों को भी आर्य सभा के लिए कुछ करने के लिए कहूंगा। मैं प्रचार से आर्य समाज को बढ़ाना चाहता हूँ। मैं प्रचारक बनकर आर्य समाज को बढ़ाना चाहता हूँ।

नाम : प्रिंस कुमार, आयु : १७ वर्ष, योग्यता : १२वीं, कार्य : विद्यार्थी, पता : पुन्हाना, मेवात, हरियाणा।

गुरुकुल में आकर मुझे अपने धर्म के बारे में बहुत सी नई बातों का पता चला। पहले मैं खुद को गर्व से हिन्दू कहता था, किन्तु अब मैं खुद को आर्य मानता हूँ। अब मैं अपने हिन्दू भाई-बहनों को आर्य समाज से जोडूंगा।

मैं समस्त भारत को और भारतवाषियों को आर्य समाज से जोडूंगा। धर्मनिरपेक्ष हिन्दुओं को आर्य/आर्या बनाने में अपना सहयोग दूगाँ।

नाम : अनुराग साव, आयु : १९ वर्ष, योग्यता : १२वीं, कार्य : विद्यार्थी, पता : हुगली, पश्चिम बंगाल।

सत्र में यथार्थ वेद सत्य को अवगत हुआ। काफी दिनों पहले से दिल में, मन में राष्ट्र सेवा, समाज सेवा एवं सम्पूर्ण मानवता के लिए हितकर कर्म करने की जो ईच्छा है, प्रेरणा है उसको कैसे करें इसका भली भाँति पूर्वक बुद्धिमता से जवाब मिला। अध्यात्म से जुड़ी काफी बड़ी शंका का तार्किक एवं बौद्धिक परिचर्चा करके समाधान मिला।

नाम : भुनेश्वर कुमार साहू, आयु : २२ वर्ष, योग्यता : १२वीं, कार्य : प्राकृतिक कृषि, पता : पलारी, बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़।

आज की वर्तमान व्यवस्था जाति, धर्म, प्रान्त जो कि विभिन्न मत-मतान्तरों में बटा है उस सब से होने वाले खतरों से आर्यावर्त, आर्य समाज को कैसे बचाया जाये तथा एक हजार साल पुराने आर्यावर्त को कैसे दुबारा जिन्दा किया जाए। गुरुकुल शिक्षा पद्धति जो कि खत्म होने के कगार पर है उसको पुनः कैसे जिन्दा किया जाए? उसके जिन्दा होने पर इस आर्यावर्त को क्या लाभ होगा? हमारी संस्कृति सभ्यता पौराणिक जो रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान जो मृत हो चुके हैं वे दुबारा जिन्दा हो सकेंगे।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा ने लघुगुरुकुल का शुभारम्भ करके आज के युवा पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, नैतिक मूल्य को भूलते जा रहे है। उसको पुनः आर्यावर्त, आर्यसमाज की मुख्य धारा में कैसे जोड़ा जाए तथा इसे युवा के नैतिक, बौद्धिक, शारारिक तथा मानवीय मूल्यों को कैसे बचाया जाए, वेदों का महत्व बताते हुए वेदों से आर्यावर्त फिर से विश्व गुरु कैसे बनेगा तथा इसी के साथ अष्टांग योग का महत्व बताते हुए जीवन में इसका कितना महत्व है। अष्टांग योग के विभिनन पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करने पर धर्म क्या है? उपासना क्या है? ईश्वर का संविधान वेद है जो किसी भी धर्म, जाति सम्प्रदाय की अवहेलना नहीं करता सबको प्राणि मात्र की जीवन का सन्देश देता है।

ज्यादा और कुछ नहीं लिखते हुए मैं अन्त में यही सार लिखूंगा कि मैं पहली बार सत्र में आया हूँ हमारी संस्कृति और सभ्यता हमारा आर्यावर्त, आर्यधर्म, अखण्ड आर्यावर्त को टुकडे होने से बचाना है तो हमें सभी आर्यों को जाति धर्म, मजहब भेद-भाव, प्रान्तवाद किसी भी प्रकार की भेदभाव किये हमे सब को संगठित करना होगा तभी हम महर्षि दयानन्द के सपनों का आर्यावर्त आर्यसमाज बना पायेंगे।

समाज की उन्नति के लिए तथा बौद्धिक समाजिक क्रान्ति के लिए दो दिवसीय लघु गुरुकुल का बहुत ही सराहनीय प्रयास रहा। जय आर्यावर्त।

नाम : मुकेश कुमार खटीक, आयु : ३२ वर्ष, योग्यता : शास्त्री, कार्य : जनरल स्टोर, पता : माण्डलगढ, भीलवाड़ा, राजस्थान।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- **www.aryanirmatrisabha.com** पर उपलब्ध है। अतः आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अतः पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक- **www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका** पर जाएं।

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।